पृथ्वी एवं सूर्य में पौर्वापर्यविषयक सिद्धान्त (२)

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर (राज.)

(गतांक का शेषभाग)

5. महर्षि अगस्त्य का सिद्धान्त

पृथ्वी एवं सूर्य के पौर्वापर्य के विषय में ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल में ही महर्षि अगस्त्य का सिद्धान्त उपलब्ध होता है। वहाँ उन्होंने इस विषय की शंकास्पदता को ही व्यक्त किया है।

जैसेः-

''कौन पदार्थ पहले हुए कौन पदार्थ बाद मे उत्पन्न हुए इसे कैसे जाना जा सकता है। उत्पन्न होने पर क्रान्तद्रष्टा भी कहाँ जान पाते हैं, अतः कौन ज्ञान सकता है। जो भी पदार्थ संज्ञावान् हैं, वे विश्वात्मा से परिपूर्ण है। दिन एवं रात्रि की भाँति चक्रवत् उनका विवर्त्त ही सक्रिय रहता है''

(ऋग्वेद 1/185/1)

उपर्युक्त श्रुति से ज्ञात होता है कि जैसे अहः एवं रात्रि क्रमशः विवर्त्त को प्राप्त करते है, ठीक वैसे ही द्यावापृथिवी के भी विवर्त्त का क्रम है, किन्तु उसमें पौर्वापर्य की कल्पना सम्भव नहीं प्रतीत होती। इस प्रकार क्रमिक सक्रियता की स्थिति में पृथ्वी एवं सूर्य की उत्पत्ति में भी पौर्वापर्यगत क्या क्रम था, इसे कौन जान सकता है?

इसी श्रुति को आधार मान कर पं. मधुसूदन ओझा ने लिखा हैः-

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य ने इन दोनों (पृथ्वी एवं सूर्य) के पौर्वापर्य के विषय में स्पष्ट रूप से दुरूहत्व का ही कथन किया है। इस विषय में सत्य तो अवश्य चिन्तनीय है, किन्तु आज तक इस विषय में कुछ नहीं जाना गया, अतः यथास्थिति ही स्वीकार करनी चाहिए।

6. पौराणिक सिद्धान्त

पुराण वाङ्मय में मूलतः वेद का ही उपबृंहण हुआ है। वहाँ सृष्टि एवं प्रलय का विषय विस्तार से निरूपित किया गया है। वहाँ कहा गया है, कि प्रलयकाल में प्रथमतया पृथ्वी का लय होता है, तब सूर्य बचा रहता है। महा-प्रलय में भी पृथ्वी के लय के अनन्तर ही सूर्य का लय होता है। वैदिक विद्वान् इस सन्दर्भ में लय का कारण अग्निक्षय को बतलाते हैं। ऐसी स्थिति में अग्नि ही जीवन सिद्ध होता है। यदि पहले उत्पन्न होने वाले का लय (विनाश) पहले माना जाये, तो पृथ्वी का ही पहले होना सिद्ध होता है। इस दृष्टि से कुछ विद्वान् कहते हैं कि पृथिवी का जब आत्यन्तिक अग्निक्षय होता है, तभी पृथ्वी का लय होता है। यह लय स्वरूप का परित्याग मात्र है अथवा विनाश इस विषय में भी पौराणिक विद्वानों में विरोधात्मक स्थिति विद्यमान है।

यही कारण है कि कुछ विद्वान् लय को विनाश नहीं मानते। उनके मतानुसार पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। अथवा जैसा कि दार्शनिक भी प्रतिपादित करते हैं कि पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में तथा आकाश ब्रह्म में विलीन हो जाता है। इस प्रकार लय का क्रम कहा गया है।

दार्शनिकों ने सूर्य के लय के विषय में कुछ विशिष्ट नहीं कहा है। पौराणिक विद्वानों में से ही कुछ कहते हैं कि नैमित्तिक प्रलय में पृथ्वी का प्रलय होता है तथा प्राकृतिक प्रलय में सूर्य का। इससे यह भी लक्षित होता है कि कल्पादि में जब सृष्टि होती है, तब पहले पृथ्वी ही उत्पन्न होती है । उसके पश्चात् सूर्य उत्पन्न होता है, किन्तु मन्वन्तरीय प्रलय के अनन्तर सूर्य तो पहले ही उपस्थित रहता है। उस समय केवल पृथ्वी की उत्पत्ति के ही देखे जाने से कुछ विद्वान् सूर्य के अनन्तर पृथ्वी आविर्भूत हुई ऐसा कहते हैं।

ग्रहों के लय के विषय में पं. मधुसूदन ओझा महोदय लिखते हैः-

''प्रकाशरश्मियों के पुञ्जीभूत आत्मा वाला यह सूर्य गति की असमानता के कारण तब तक विवर्त्तमान रहता है। तीव्र गति का विच्छेदन करते हुए अपने अन्तिम स्तर पर जब पहुँचता है, तब इस प्रक्रिया से अपने ग्रहस्वरूप को निर्मित कर लेता है। फिर इसी के पश्चात् और फिर उसके भी पश्चात् अनेक प्रकार से अन्य ग्रहों को भी उत्पन्न करके, अपने से उत्पन्न उन अन्य ग्रहों को आज भी अपने ही मार्ग पर गतिशील बने रहने के लिए ग्रहण करता है।

इन ग्रहों का प्रकाश सूर्य की अपेक्षा अल्पाल्प मात्रा में होने के कारण क्रमशः शनैः शनैः ह्रास (विनाश) को प्राप्त करता है। जब आत्यन्तिक अग्निक्षय की स्थिति होती है, तब चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी अन्ततः विनाश को प्राप्त करते हैं। **(अहोरात्रवाद-5/16-18)**

इस उल्लेख से यह अनुमान किया जा सकता है, कि आत्यन्तिक प्रलय में जब अग्नि महाभूत का लय वायु महाभूत में होता है, उस अवधि में ही सूर्य चन्द्र तारों एवं नक्षत्रो का भी लय हो जाता है। ऐसा मानने पर सूर्य की उत्पत्ति भले ही आनन्तरीया न लक्षित होती हो, किन्तु सूर्य में विद्यमान तत्वों के पिण्डीभाव, आकृतिनिर्माण एवं स्वरूप की उत्पत्ति में तो रज ही एकमात्र कारण है। वह रज पृथ्वी की ही अंशभूत है। अतएव पहले पृथ्वी महाभूत की विद्यमानता लक्षित होती है।

7. नव्य मत

नव्यमत के अनुयायी विद्वान् कहते हैं, कि सर्वप्रथम वैश्वानर अग्नि से सोम एवं सवितृ रश्मियों के सम्पर्क से केतु उत्पन्न होते हैं। ये केतु तारो की भॉति ही होते है। इनका आकार अत्यन्त विस्तृत होता है। इन केतुओं से ही सूर्य की उत्पत्ति होती है। जब अनेक केतु एकत्र होकर विशालकाय पिण्ड का रूप प्राप्त कर लेते हैं, तो वही पिण्ड लोक में सूर्य नाम से कहा जाने लगता है।

इस विषय में कहा गया है:-

''यह सूर्य आकाश में अग्नि के रेतस् (वीर्य) रूपी सोम का भक्षण करते हुए अत्यधिक प्रज्ज्वलित होता है। वह सभी दिशाओं से सोम का आहरण करता है तथा उसके परिणाम में अपनी नाभि (केन्द्र) में ज्वलनशील पिण्ड को धारण करता है।

पहले वह सूर्य प्रज्जवलित केतु के रूप में ही विद्यमान था। धीरे धीरे उसने सम्पूर्ण ज्वाला (प्रकाश) को संग्रहित कर पिण्डात्मता को प्राप्त किया। वही केतु अब सूर्य के रूप में भासित होने लगा। ब्रहाण्ड में विद्यमान सभी सूर्य केतुओं से ही उत्पन्न हुए हैं'' **(अहोरात्रवाद-5/23, 24)**

ये नव्य मतानुयायी विद्वान् ही पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में अपना अभिमत इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं, कि सूर्य में एक निश्चित अवधि के पश्चात् अग्नि के क्षय का क्रम प्रारम्भ होता है। जैसे सजीवों में आयु की सुनिश्चित अवधि के अनन्तर धातुक्षय का प्रारम्भ हो जाता है, उसी प्रकार सूर्य में भी अग्निक्षय की प्रक्रिया का होना सम्भव प्रतीत होता है। इस विषय में उनके कथन का आधार यह है, कि अग्नि भी धीरे धीरे शान्त ही होती है। ऐसा नहीं है, कि वह केवल जलती ही रहती हो। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से सूर्य में अग्निक्षय का क्रम लक्षित होता है। जब सूर्य में आत्यन्तिक अग्निक्षय होता है, तब वह सूर्य ही पृथ्वी के रूप में परिणत हो जाता है। जैसा कि कहा है-

''क्रमशः यह सूर्य अपने अन्तःस्थ अग्नि का ह्रास करके सम्पूर्ण क्षार को बहिष्कृत करके अपने ही पिण्ड में संकुचित हो जाता है तथा प्रकाश एवं उष्मा प्रदान करना बन्द कर देता है, तो पृथ्वी के रूप में परिणत हो जाता है'' (अहोरात्रवाद-5/25)

पृथ्वी में अग्नि सोम के अधिकृत होती है। यही अग्नि वाडवाग्नि के रूप में पृथ्वी में विद्यमान जल में अनुभव की जाती है। पृथ्वी से निकली हुई रश्मियों में भी यही अग्नि विद्यमान होती है। वही अग्नि जब ग्रह-नक्षत्रों की रश्मियों द्वारा आकृष्ट की जाती है, तब वैश्वानराग्नि के रूप को प्राप्त करती है।

नव्य मतानुयायी विद्वान् ऐसा भी कहते हैं, कि जब पृथ्वी में विद्यमान सोम अत्यधिक अग्निक्षय को प्राप्त कर लेता है, तब विशुद्ध सोममयी यह पृथ्वी चन्द्रमा के रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा की उत्पत्ति होती है। कहा है-''जिस स्थिति में इस पृथ्वी से वह सम्पूर्ण सोम अग्नि के क्षय को प्राप्त कर लेता है, तो अग्नि से रहित वह सोम इस पृथ्वी पिण्ड के साथ ही विशुद्ध सोममय चन्द्र के रूप में उद्भूत हो जाता है।'' (अहोरात्रवाद-5/27)

गन्धर्व संज्ञा वाली रश्मियों के पुंजीभूत स्वरूप वाली विशेष प्रकार की उल्कायें चन्द्रमा के चारों ओर परिक्रमण करती हैं। चन्द्रमा में भी गन्धर्व रश्मियाँ रहती हैं। चन्द्रमा का परिक्रमण करने वाले उल्कायें वैश्वानर अग्नि को ग्रहण करती हैं, अतः उन उल्काओं के ताप से चन्द्रमा में विद्यमान सोम भी प्रलय के समय पृथ्वी एवं सूर्य में विद्यमान अग्नि की भाँति क्षय को प्राप्त कर लेता है। अपने घनीभाव को त्याग कर तरलत्व एवं विरलत्व को प्राप्त कर वायु में ही समाहित हो जाता है। जैसा कि वहीं अहोरात्रवाद में पं. मधुसूदन ओझा महोदय ने नव्य मत प्रतिपादन के प्रसंग में कहा है-

''पहले यह पृथ्वी सूर्य ही थी, और सूर्य भी (अपना स्वरूप ग्रहण करने से पहले) कभी केतु था। जो पहले केतु होते हैं, वे ही समय आने पर बाद में सूर्य के रूप में परिणत हो जाते हैं। केतु अचानक स्वयं उत्पन्न हो कर कालक्रमानुसार सूर्य की एवं तदनन्तर पृथ्वी की तथा तदनन्तर चन्द्रमा की सृष्टि करते हैं। चन्द्रमा क्रमशः अग्निरहित हो जाने पर क्षीण होता हुआ अदृश्य हो जाता है तथा अन्तरिक्ष में ही विलीन हो जाता है''। (अहोरात्रवाद-5/30,31)

इस प्रकार नव्य मत में केतु से सूर्य, सूर्य से पृथ्वी तथा पृथ्वी से चन्द्रमा ऐसा उत्पत्तिक्रम प्रतिपादित किया गया है। यहाँ भी जो शंका होती है, वह वैश्वानर अग्नि के विषय में ही होती है, क्योंकि द्यौ में विद्यमान वैश्वानर अग्नि भी पृथ्वीमहाभूत की उत्पत्ति से पूर्वकाल की नही है। ऐसा हो सकता है, कि यह त्रैलोक्य पृथ्वी महाभूत की उत्पत्ति के पश्चात् उत्पन्न हुआ हो, क्योंकि यह त्रैलोक्य भूमण्डल के अन्तर्गत ही है। दृश्यमान पृथिवी बाद में उत्पन्न हुई हो सकती है।